International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(6): 113-117

International Journal of Sanskrit Research
अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(6): 113-117
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 14-09-2022
Accepted: 17-10-2022

डॉ. मधुबाला सिंह
एम. फिल., पीएच.डी.,
एसोसिएट प्रोफेसर,
विभागाध्यक्षा, संस्कृत विभाग,
मिराण्डा हाऊस महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत

Corresponding Author:
डॉ. मधुबाला सिंह
एम. फिल., पीएच.डी.,
एसोसिएट प्रोफेसर,
विभागाध्यक्षा, संस्कृत विभाग,
मिराण्डा हाऊस महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत

न्यायदर्शनानुसार आसत्ति विमर्श

डॉ. मधुबाला सिंह

सारांश
शाब्दबोध की प्रक्रिया में शाब्दबोध के प्रति करण (पदज्ञान) का जितना महत्त्व है उतना ही शाब्दबोध के सहकारी कारणों का है। वाक्यस्थ पदों में योग्यता, आकाङ्क्षा, आसत्ति और तात्पर्य इन चारों का ज्ञान शाब्दबोध के प्रति सहकारी कारण के रूप में आवश्यक होता है। आसत्ति के लिए कुछ दार्शनिकों ने सन्निधि पद का प्रयोग भी किया है। आसत्ति और सन्निधि दोनों ही शब्दों से स्पष्ट है कि सामीप्य अथवा नैकट्य की बात कही जा रही है। अर्थात् वायस्थ पदों में सामीप्य होना चाहिए। यह सामीप्य किस प्रकार होता है? वाक्यस्थ पदों का बिना विलम्ब किये उच्चारण करना ही आसत्ति है। साथ ही वाक्य के पदों के मध्य कोई अन्य व्यवधान उपस्थित नहीं होना चाहिए, यथा एक वाक्य को समाप्त किए बिना ही अन्य वाक्य के पदों का उच्चारण करने से पदों के मध्य व्यवधान आ जाने से यहाँ आसत्ति नहीं होगी, जिससे श्रोता को शाब्दबोध नहीं हो पाएगा। इस प्रकार शाब्दबोध के प्रति आसत्ति की सहकारी कारणता अनिवार्य रूप से व्याख्यायित है।

कूटशब्द: आसत्ति, सन्निधि, शाब्दबोध, सहकारी कारणा, आसत्तिभ्रम, पदस्मरण

प्रस्तावना
न्यायदर्शन के अनुसार सार्थक 'पद-समूह' को 'वाक्य' कहते हैं। वाक्य दो प्रकार के होते हैं वैदिक तथा लौकिक। सामान्य लोकव्यवहार में प्रयुक्त सार्थक पद-समूह लौकिक वाक्य कहलाते हैं। संहिता एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रयुक्त वाक्य वैदिक वाक्य कहे जाते हैं।
न्यायसूत्र में वाक्य इस अर्थ में शब्द का प्रयोग मिलता है- आप्तोपदेश: हि शब्द: ।[1] यहाँ शब्द का प्रयोग वाक्य अर्थ में किया गया है। यहाँ उपदेश शब्द से व्यवहार अथवा प्रवृत्ति को बताया गया है। भाष्यकार वात्स्यायन ने भी उपदेश पद की यही व्याख्या की है।[2] नव्यनैयायिकों में गङ्गेश उपाध्याय, लौगाक्षी भास्कर तथा अन्नम्भट्ट ने भी 'पद-समूह' को'वाक्य' कहा है।[3]

1. न्या. सू. 1.1.7
2. तथा च सर्वेषां व्यवहारा: प्रवर्तन्त इति। न्या. भा., 1.1.7, पृ. 25
3. वाक्यं पदसमूह:, त. चिन्ता म., पृ. 482

नैयायिकों ने उन्हीं वाक्यों को प्रामाणिक स्वीकार किया है जिन वाक्यों में आकाङ्क्षा, योग्यता व सन्निधि अनिवार्य रूप से हो। इससे इतर वाक्यों को नैयायिक प्रामाणिक नहीं मानते हैं।

नव्यनैयायिकों ने प्राचीन नैयायिकों की अपेक्षा वाक्य-स्वरूप पर अपेक्षाकृत सूक्ष्मतर चिन्तन उपस्थित किया है। प्राचीन नैयायिकों ने पद-समूह को ही वाक्य माना। जबकि नव्य नैयायिकों ने इसके साथ आकाङ्क्षा, योग्यता एवं सन्निधि को वाक्य का अनिवार्य तत्त्व स्वीकार किया। वाचस्पति मिश्र इसी सन्दर्भ में न्यायवार्तिकटीका में वाक्यार्थ-बोध के लिए आकाङ्क्षा, योग्यता तथा सन्निधि का भी वर्णन करते हैं।[4] इसीलिए न्यायसिद्धान्तमुक्तावली के शब्दखण्ड में शाब्दबोध के चार कारण बताये गये हैं- आसत्ति, योग्यता, आकाङ्क्षा तथा तात्पर्य।[5] उपर्युक्त कारणों में से सभी नैयायिकों ने इन चारों को शाब्दबोध में कारण नहीं माना है। कुछ नैयायिक इन सभी को शाब्दबोध में कारण स्वीकार करते हैं तथा कुछ प्रारम्भिक तीन को ही स्वीकार करते हैं। उदाहरण के लिए तर्कसङ्ग्रह के रचनाकार अन्नम्भट्ट 'आकाङ्क्षायोग्यतासन्निधिश्च वाक्यार्थज्ञाने हेतुः।[6]' ऐसा कहकर आकाङ्क्षा, योग्यता तथा सन्निधि को ही वाक्य के अर्थ में हेतु मानते हैं, तात्पर्य को कारण नहीं मानते हैं।

मुक्तावलीसङ्ग्रह के रचयिता आचार्य पञ्चानन शास्त्री ने भी न्यायसिद्धान्तमुक्तावली के अनुसार वाक्यार्थ या शाब्दबोध में आसत्ति, योग्यता, आकाङ्क्षा तथा तात्पर्य का ज्ञान आवश्यक माना है।

प्रस्तुत शोधपत्र में शाब्दबोध के सहकारिकारणों में से एक आसत्ति को न्यायशास्त्र दृष्ट्या विशेष रूप से न्यायसिद्धान्तमुक्तावली की अन्यतमा टीकाओं में से एक पञ्चाननशास्त्रिविरचित मुक्तावलीसङ्ग्रह टीका के अनुसार विस्तार से बताया जाएगा।

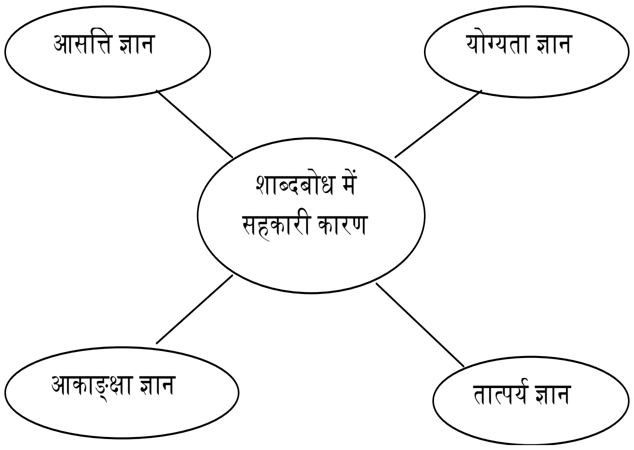

- **आसत्ति:** आसत्ति वाक्य का अनिवार्य अङ्ग है, अन्य दर्शनों में आसत्ति के लिए सन्निधि शब्द का प्रयोग किया गया है। आकाङ्क्षा और योग्यता होने पर भी यदि वाक्यस्थ पद सन्निहित नहीं है तो वाक्यार्थ-बोध नहीं होता है।
- **न्यायमत:** वाक्यस्थ पदों का अविलम्ब उच्चारण आसत्ति कहलाता है। अर्थात् प्रयोग किए गए पदों में दैशिक और कालिक निकटता होनी आवश्यक है। यथा- 'गाम् आनय' में गाम् व आनय इन दोनों पदों के उच्चारण में काल का व्यवधान न होने पर ही यह वाक्य बनता है एवं इससे वाक्यार्थ-बोध होता है।

न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में आसत्तिज्ञान को शाब्दबोध की प्रक्रिया में सहकारी कारण के रूप में स्वीकार किया गया है। वहाँ आसत्ति, योग्यता, आकाङ्क्षा तथा तात्पर्य का ज्ञान शाब्दबोध में कारण है।[7] आसत्ति, योग्यता, आकाङ्क्षा तथा तात्पर्य में से कौन पद में रहता है और कौन अर्थ में अर्थात् कौन पदनिष्ठ है और कौन अर्थनिष्ठ? ऐसी जिज्ञासा होना स्वाभाविक है। योग्यता अर्थनिष्ठ, आसत्ति तथा आकाङ्क्षा पदनिष्ठ और तात्पर्यज्ञान वक्तृनिष्ठ होता है।

4. न्या. वा. टी., पृ. 174
5. आसत्तिज्ञानं योग्यताज्ञानमाकाङ्क्षाज्ञानं तात्पर्यज्ञानं च शाब्दबोधे कारणम्। न्या. सि. मु., पृ. 409, 410
6. तर्क. सं., पृ. 215
7. आसत्तियोग्यताकाङ्क्षातात्पर्यज्ञानमिष्यते- न्या. सि. मु., श. ख., का. 82

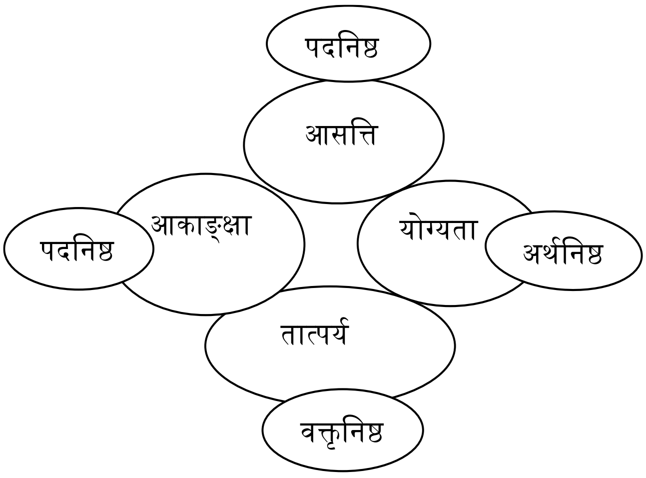

आसत्ति की व्याख्या करते हुए कहा गया है- "सन्निधानं तु पदस्यासत्तिरुच्यते ।"[8] आसत्ति से तात्पर्य है सन्निधि । सन्निधान शब्द से अभिप्राय है- अव्यवधान, निकटता या सामीप्य । पदों की आसत्ति से अर्थ हुआ पदों की सन्निधि । अर्थात् पदों की निकटता या परस्पर सामीप्य 'आसत्ति' कहलाती है । जिस पदार्थ के साथ जिस पदार्थ का अन्वय अपेक्षित होता है, आसत्ति में बोध का अव्यवधान अर्थात् व्यवधान का न होना आवश्यक तत्त्व है । यहाँ पञ्चानन शास्त्री ने अन्वय का अर्थ किया है- 'अन्वय: शाब्दबोधविषयीभूत: संसर्ग: ।'[9] शाब्दबोध में विषयीभूत संसर्ग अन्वय कहलाता है ।

जैसे वक्ता 'राम भोजन' इतना कहकर अन्य बात प्रारम्भ कर दे और बाद में कहे 'खाता है' तो इन दोनों वाक्यांशों का सम्बन्ध एक साथ ग्रहणीय नहीं है ऐसे में व्यवछिन्न पदसमूह वाक्य नहीं बन सकता । इसलिए आसत्ति के बोध में अव्यवधान अनिवार्य है । दोनों पदों की व्यवधानरहित उपस्थिति ही शाब्दबोध में कारण होती है ।[10] इसलिए 'गिरिर्भुक्तमग्निमान् देवदत्तेन' इन पदसमूहों से शाब्दबोध सम्भव ही नहीं हो पाता ।[11] क्योंकि यहाँ शब्दों की निकटता तो है किन्तु जिन दो शब्दों में अन्वय की अपेक्षा है वे व्यवधानरहित न होकर व्यवधान से युक्त हैं ।[12]

8. न्या. सि. मु., पृ. 121
9. मु. सं.,पृ. 222
10. यत्पदार्थेन यत्पदस्यान्वयोपेक्षितस्तयोरव्यवधानेनोपस्थितिः शाब्दबोधे कारणम्। मु. सं. पृ. 222
11. तेन गिरिर्भुक्तमग्निमान् देवदत्तेनेत्यादौ न शाब्दबोधः। मु. सं. पृ. 222
12. तथा चात्रान्वययोग्ययोस्तात्पर्यविषयीभूतयोर्गिरिपदार्थाग्निमत्पदार्थयोर व्यवधानाभावान्न शाब्दबोध इति भावः। मु. सं., पृ. 222

आसत्ति भ्रम से शाब्दबोध

एक उदाहरण- "नीलो घटः द्रव्यं पट:" इस वाक्य में आसत्ति नहीं है तथापि आसत्ति के भ्रम से यहाँ शाब्दबोध हो जाता है ।[13] आसत्ति के भ्रम से शाब्दबोध होने में कोई क्षति भी नहीं है ।[14] जैसा कि मुक्तावलीसङ्ग्रह में भी वर्णन मिलता है:- "आसत्तिभ्रमाच्छाब्दभ्रमाभावेऽपि न क्षतिः" ।[15] 'नीलो घटः द्रव्यं पट:' यहाँ वक्ता का अभिप्राय यह है कि इस वाक्य से श्रोता 'नील: घट:, पटः द्रव्यम्', ऐसा अर्थ माने । 'नील: पट:', घटः द्रव्यम्' इसमें आसत्ति के लक्षण के अनुसार आसत्ति भी है । किन्तु यदि श्रोता 'नील: घट:'; द्रव्यं पट:' इन शब्दों में ही आसत्ति समझ लेता है, जहाँ आसत्ति अभिप्रेत न थी वहाँ आसत्ति समझने पर तब आसत्ति भ्रम से श्रोता को 'नीला घड़ा है' 'पट द्रव्य है' यह ज्ञान होता है । अतः यह मान्य है कि आसत्ति भ्रम से शाब्दबोध सम्भव है और इसमें कोई हानि नहीं है ।[16]

बृहद्वाक्यों में पदस्मरण के संस्कार द्वारा शाब्दबोध

जब शब्द व्यवधानरहित हो तो उस समय शङ्का हो सकती है कि जब "छत्री कुण्डली वासस्वी देवदत्त:" इस प्रकार वाक्य के उच्चारण करने पर दूसरे शब्द के स्मरण के समय पहले पद का स्मरण नाश हो जाने से व्यवधानरहित उस पद का स्मरण असम्भव है । उत्तरपद के उच्चारण के समय पूर्वपद नाश हो ही चुका है- 'योग्यविभुविशेषगुणानां स्वोत्तरवर्तिविशेषगुणनाश्य-त्वात् ।' अतः दोनों पदों के स्मरण से प्राप्त पदार्थो की उपस्थिति ही सम्भव नहीं । अर्थात् कुण्डली पद स्मरण रहता है तब छत्री पद का स्मरण नष्ट हो जाता है ।

इस शङ्का का सिद्धान्ती सम्मत समाधान यह है कि प्रत्येक शब्द के अनुभव से

उत्पन्न संस्कारों से अन्तिम पद के साथ सभी पदों से सम्बन्धित स्मरण की

व्यवधानरहित उपस्थिति हो जाती है ।[17] संस्कारों से स्मरण की उत्पत्ति को पुष्ट

13. नीलो घटो द्रव्यं पट इत्यादावासत्ति भ्रमाच्छाब्दबोधः, न्या. सि. मु., पृ. 65
14. आसत्तिभ्रमस्य न शाब्दभ्रमप्रयोजकत्वम्, किन्तु योग्यताभ्रमस्य। मु. सं., पृ. 222
15. मु.सं., पृ. 222
16. न्या. सि. मु., श. ख., द. शा., पृ. 127
17. ननु यत्र छत्री कुण्डली वासस्वी देवदत्त इत्युक्तम्, तत्रोत्तरपदस्मरणेन पूर्वपदस्मरणस्य नाशादव्यवधानेन तत्तत्पदस्मरणासम्भव इति चेत् न प्रत्येकपदानुभवजन्यसंस्कारैश्चरमं तावत् पदविषयकस्मरणस्याव्यवधानेनोत्पत्तेः। मु. सं., पृ. 223

करते हुए सिद्धान्ती का कहना है- “तावत्पदसंस्कारसहितचरमवर्णज्ञानस्योद्बोधकत्वात् । कथमन्यथा नानावर्णैरेकपदस्मरणम् ।”[18] अर्थात् जिस प्रकार सन्निकर्षों से एक प्रत्यक्ष की उत्पत्ति होती है उसी भांति नाना संस्कारों से एक स्मरण की भी उत्पत्ति की संभावना है। सभी पदों (शब्दों) के संस्कारों से एक स्मरण की उत्पत्ति सम्भव है । सभी पदों में संस्कारों के साथ अन्तिम वर्ण ज्ञान का उद्‌बोधक होता है, अन्यथा तो नाना वर्णों से एक पद का स्मरण भी असम्भव होता ।[19]

पदार्थान्वय विषयक प्राचीन व नव्यनैयायिक मत

कुछ नैयायिकों का मानना है कि पदार्थों के अन्वय के सम्बन्ध में ‘खलकपोतन्याय’ से एक ही बार में परस्पर अन्वित हो जाते हैं । यहाँ मुक्तावलीसङ्ग्रहकार पञ्चानन शास्त्री बताते हैं कि यह उदयनाचार्य का मत है,[20] कि खलिहान में वृद्ध, युवा तथा शिशु, कबूतर एक साथ उतरते हैं । उनमें किसी के पहले अथवा बाद में आने का भान नहीं होता उसी प्रकार पदार्थों के अन्वय में भी कोई आगे-पीछे का क्रम नहीं होता । न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में भी वर्णन मिलता है:-

> वृद्धा युवान: शिशवः कपोताः खले यथामी युगपत् पतन्ति ।
> तथैव सर्वे युगपत् पदार्थाः परस्परेणान्वयिनो भवन्ति। ।[21]

जबकि इसके ठीक विपरीत नव्यनैयायिकों का कहना है कि जिन-जिन पदों में आकाङ्क्षा, योग्यता एवं सन्निधि उपस्थित होती है उन पदों से अन्वित पद का अपना अर्थ (स्वार्थ) पदों से ही जाना जाता है ।[22] इस प्रकार नव्य न्याय में पदार्थों के अन्वय में क्रमिकता होती है ।

यहाँ आचार्य पञ्चानन शास्त्री व्याख्या करते हैं कि ‘ग्रामं गच्छति’ इत्यादि वाक्यों में सर्वप्रथम ‘ग्रामवृत्तिकर्मत्व’ यह बोध होता है । अनन्तर गमन के अनुकूल कृति का बोध होता है, अन्त में ग्रामकर्मक गमनानुकूल कृतिमान् यह शाब्दबोध होता है ।[23] अत: सर्वत्र खण्डवाक्यार्थबोध पूर्व में अर्थात् विशेषणातावच्छेदकप्रकारक निश्चय के पश्चात् विशिष्ट का बोध हो, इसी रीति से महावाक्यार्थ का बोध होता है ।[24]

महावाक्यार्थ का बोध खण्डवाक्य के अर्थबोध के बाद पदार्थस्मृति द्वारा होता है ।[25] इससे वर्ण के माध्यम से अभिव्यञ्जित होने वाले पद स्फोट का भी निराकरण हो जाता है, क्योंकि उन-उन वर्णों के संस्कारों से युक्त चरम (अन्तिम) वर्ण के ज्ञान से उसके व्यञ्जन के द्वारा ही अर्थ की उपस्थिति हो जाती है ।[26]

मुक्तावलीकार के अनुसार ‘द्वारम्’ ऐसा कहने पर ‘पिधेहि’ पद का अध्याहार आवश्यक है । क्योंकि पदजन्य पदार्थस्मरण ही शाब्दबोध में हेतु है । जैसाकि मीमांसकों के अनुसार ‘पिधेहि’ पद के बिना ही अर्थबोध हो जाता है । यह स्थिति पदजन्य नहीं है अत एव सदैव इस प्रकार के वाक्य में पदाध्याहार आवश्यक है । ऐसा मानने का मुख्य कारण है- पद से उत्पन्न होने वाली पदार्थ की उपस्थिति ही शाब्दबोध का प्रमुख कारण है । और यदि पद अध्याहार न करें तो ‘पुष्पेभ्यः’ शब्द में उपस्थित चतुर्थी विभक्ति अनुपपन्न हो जाती है ।[27] ‘पुष्पेभ्यः’ यह अपूर्ण वाक्य है । इसके साथ ‘स्पृह्यति’ इस क्रियापद का अध्याहार करना आवश्यक है । क्योंकि व्याकरणशास्त्र का नियम है- स्पृह् धातु के योग में जो इष्ट (ईप्सित) हो उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है ।[28] इसलिए जब वक्ता ‘पुष्पेभ्यः’ इतना मात्र कहता है, ‘स्पृह्यति’ उसके साथ नहीं कहता तो जब तक ‘स्पृह्यति’ पद का अध्याहार न कर लिया जाए तब तक चतुर्थ्यन्त

18. मु. सं., पृ. 223
19. तावत्पदसंस्कारसहितचरमवर्णज्ञानस्योद्बोधकत्वात्। कथमन्यथा नानावर्णैरेकपदस्मरणम्। मु. सं., पृ. 123
20. उदयनाचार्य सम्मतिमाह - वृद्धा युवान इति। - मु.सं., पृ. 223
21. न्या. सि.मु., श. ख., पृ. 67
22. अपरे तु- यद्यदाकाङ्क्षितं योग्यं सन्निधानं प्रपद्यते। तेन तेनान्वितः स्वार्थः पदैरेवावगम्यते।। मु. सं., पृ. 123
23. ग्रामं गच्छतीत्यादौ प्रथमं ग्रामवृत्तिकर्मत्वमिति बोधस्ततो गमनानुकूला कृतिस्ततो ग्रामकर्मकगमनानुकूलकृतिमानित्यादिबोधः। - मु.सं., पृ. 224
24. अत एव सर्वत्र खण्डवाक्यार्थबोधरूपस्य विशेषणतावच्छेदकप्रकारक निश्चय पूर्वे सत्वाद् विशिष्टस्य वैशिष्ट्यमिति रीत्यैव महावाक्यार्थबोध इति भावः। - मु.सं., पृ. 224
25. तथा च खण्डवाक्यार्थबोधानन्तरं तथैव पदार्थस्मृत्या महावाक्यार्थबोध इत्यप्याहुः। न्या. सि. मु., पृ. 68
26. एतेन तावद् वर्णाभिव्यङ्ग्यः पदस्फोटोऽपि निरस्तः, तत्तद्वर्णसंस्कारसहितचरमवर्णोपलम्भेन तद्व्यञ्जकेनैवोपपत्तिरिति। न्या. सि. मु., पृ. 69
27. तथा पुष्पेभ्यः इत्यादौ स्पृहयतीत्यादिपदाध्याहारं विना चतुर्थ्यनुपपत्तेः पदाध्याहार आवश्यकः। न्या. सि. मु., श. ख., पृ. 76
28. स्पृहेरीप्सितः, अष्टा. 1.4.36

'पुष्पेभ्यः' पद का प्रयोग उचित नहीं होगा।[29] क्योंकि ऐसा प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से पूर्णतः अशुद्ध है। अत एव ऐसे स्थल पर 'स्पृह्यति' शब्द का अध्याहार करना ही होगा।

मीमांसक मत

मीमांसासूत्र के भाष्यकार शबरस्वामी ने सन्निधि को आनन्तर्य के रूप में विवेचित किया है। दो पदों में परस्पर एक-दूसरे की अपेक्षा के सामर्थ्य को ही सन्निधि कहा गया है। कुमारिल भट्ट के मत में 'शब्दों' की अपेक्षा 'अर्थों' की सन्निधि अधिक महत्त्वपूर्ण है। इनके मत में बिना विलम्ब पदों का उच्चारण ही पर्याप्त नहीं है अपितु श्रोता की बुद्धि में अर्थबोध भी आवश्यक है।

निष्कर्षतः ऐसा मानना चाहिए कि जब भी ऐसी स्थिति हो कि कोई अपेक्षित पद वक्ता के द्वारा उच्चारण न किया गया हो तो श्रोता के द्वारा उस अनुच्चरित तथा अपेक्षित पद का अध्याहार करने पर शाब्दबोध होगा। अन्यथा शाब्दबोध मान्य नहीं होगा।[30]

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, विश्वनाथ पञ्चानन भट्टाचार्य, व्या. दयाशङ्कर शास्त्री, सुरभारती प्रकाशन, कानपुर, उत्तरप्रदेश, अप्रैल 1989
2. मुक्तावलीसङ्ग्रह टीका, पञ्चानन शास्त्री, द्वितीय संस्करण, सम्पा. गजेन्द्र चतुष्पादी चौखम्बा संस्कृत सिरीज ऑफिस, वाराणसी, 1885
3. अर्थसङ्ग्रह, लौगाक्षी भास्कर, व्या. वाचस्पति उपाध्याय, (अर्थालोक संस्कृत टीका सहित) चौखम्बा पब्लिशर्स, वाराणसी, 2005
4. तर्कभाषा, केशव मिश्र, सम्पा. एस. आर. अय्यर, (अंग्रेजी अनुवाद) चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 1971
5. तर्कसङ्ग्रह, अन्नमभट्ट, सम्पा. गोविन्दाचार्य, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2010
6. न्यायदर्शन, व्या. आ. ढुण्ढिराज शास्त्री, सम्पा. श्री नारायण मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1970
7. न्यायसूत्र (भाष्यसहित), गौतम, सम्पा. विनायक गणेश आप्टे, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, 1922
8. चतुर्वेदी, शारदा, शब्दविमर्श, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2006
9. तर्कवागीश, फणिभूषण, न्याय परिचय, रूपान्तरकर्ता किशोरनाथ झा, सम्पा. डॉ. श्री दिनेशचन्द्र गुह विद्या भवन, वाराणसी, 2014
10. पन्त, गिरीशचन्द्र, शब्दार्थबोध तथा सङ्केतग्रह सिद्धान्त, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2014
11. मिश्र, शोभाकान्त, शब्दार्थतत्त्व, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2014
12. मिश्र, रणजीत कुमार, समासशक्ति तथा शब्दशक्ति, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2017
13. शास्त्री, गौरीनाथ, शब्दार्थ मीमांसा, अनु. श्री मिथिलेश चतुर्वेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, विक्रम सम्वत् 2049

29. स्पृहार्थकधातुयोगे एव व्याकरणानुशासनेन चतुर्थ्या विधानादर्थाध्याहारपक्षे स्पृहार्थकधातुयोगाभावाच्चतुर्थी न स्यादिति भावः। मु. सं., पृ. 225

30. कारकपदेन, क्रियापदं विना कारकपदस्याभिमत-शाब्दबोधजननासमर्थत्वादिति भावः। मु. सं., पृ. 225